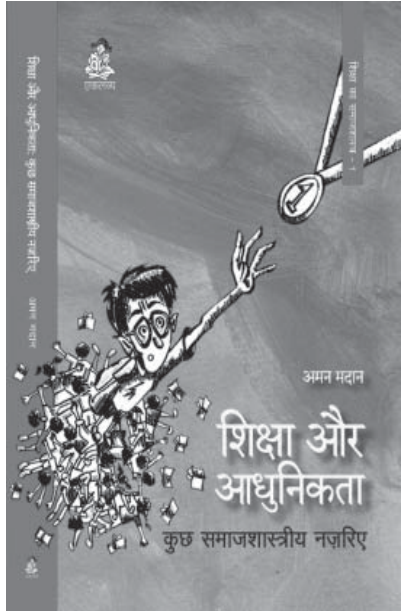


पुस्तक, जो आपको सोचने को विवश करती है

अविजित पाठक

अमन मदान की किताब *एजुकेशन एण्ड मॉडर्निटी: सम सोशोलॉजिकल पर्सपेक्टिव*,
की अविजित पाठक द्वारा समीक्षा।

प्रतिष्ठित शिक्षाविद् अमन मदान शान्ति, टकरावों के समाधान और शिक्षा के समाजशास्त्र पर अपने गहन चिन्तन के लिए जाने जाते हैं। और इस बार, जब मैंने इस पतली-सी पुस्तक को पढ़ना आरम्भ किया, तो एक बार फिर उनकी सृजनात्मक दक्षता को महसूस किया - आधुनिकता और शिक्षा की परस्पर क्रियाशीलता का परीक्षण करने की प्रक्रिया में अन्तर्ध्वनित समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्यों के साथ प्रयोग करने की उनकी काबिलियत। मुझे लगता है कि बौद्धिकता के आत्ममोह से पीड़ित अकादमिकों से भिन्न, मदान एक प्रतिभाशाली सम्प्रेषणकर्ता हैं; वे अपने पाठकों



में (और उन पाठकों का विश्वविद्यालयीन अध्यापक या शोधकर्ता होना ज़रूरी नहीं है) पेचीदा विचारों की समझ पैदा कर सकते हैं और आधुनिक समय में शिक्षा को देखने के विविध ढंगों के प्रति उनकी दिलचस्पी जगा सकते हैं। आश्चर्य की बात नहीं कि समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों और रोज़मर्रा अनुभवों के मिश्रण से युक्त इस पुस्तक का अपना आकर्षण है। हाँ, विचारों की स्पष्टता और सटीक चित्रों और रेखांकनों से युक्त इस पुस्तक में उस चीज़ को पूरा करने की सम्भावना है जिसकी अपेक्षा लेखक ने की है - 'पाठक में उन और अधिक चीज़ों को पढ़ने की आकांक्षा जगाना जो हमारे समय में शिक्षा के बारे में अन्य समाज-वैज्ञानिकों ने कहा है'

शुरुआती तौर पर, मैं उस 'समाजवैज्ञानिक कल्पना' के विचार को सामने लाना चाहता हूँ जिसकी क्रान्तिकारी अमेरिकी समाजशास्त्री सी. राइट मिल्स ने सराहना की है। यह 'निजी तकलीफों' को 'सार्वजनिक मुद्दों' में रूपान्तरित करना है। एक सरल-सा उदाहरण लें। मान लीजिए कि एक दलित छात्रा अपने स्कूल में खुद को उपेक्षित और वंचित महसूस करती है। क्या यह उसकी अपनी गलती है कि वह 'सराहनीय' या 'बुद्धिमान' नहीं है? या फिर यह प्रभावी सामाजिक संरचना और सांस्कृतिक व्यवहार है जो अभी तक सुस्थापित जाति-व्यवस्था और उससे जुड़ी सांस्कृतिक और प्रतीकात्मक हिंसा का उन्मूलन करने में विफल रहा? वास्तव में, एक ज्ञानात्मक अनुशासन के रूप में समाजविज्ञान हमें प्रभावशाली कॉमनसेंस के परे ले जा सकता है, और हमें अपने जीवन-क्रम को समझने के लिए वृहत् सामाजिक व्यवस्था को समझने में मदद कर सकता है। मैं इस पुस्तक से एक अनूठा उदाहरण लेता हूँ। मदान उस मुश्किल का हवाला देते हैं जिसका सामना ग्रामीण क्षेत्रों के छात्रों को नगरीय स्कूलों में प्रवेश लेते समय करना पड़ता है। यह कहना आसान है कि ये छात्र इतने समझदार नहीं होते कि वे यह समझ सकें कि उन्हें क्या पढ़ाया जा रहा है। लेकिन फिर, अगर हम समाजशास्त्रीय

ढंग से सोचें, और 'अनुभव के अपने छोटे-से दायरे' से बाहर निकलकर देखें, तो इस मसले की हमारी समझ को एक नया आयाम मिलेगा। मदान के अपने शब्दों में:

समाजशास्त्री इस बात की ओर संकेत करते हैं कि हिन्दुस्तान के स्कूलों में पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तकें, परीक्षाएँ और अध्यापक, सभी नगरों में दफ्तरी नौकरियों पर ध्यान केन्द्रित करते हैं। इस वजह से स्कूल उन छात्रों के लिए ज्यादा आरामदेह बन जाते हैं जो ऐसे परिवारों से आए होते हैं जो पहले से ही इस तरह की नौकरियों में होते हैं, और अन्य सामाजिक पृष्ठभूमियों से आए छात्रों के लिए वे अलगाव पैदा करने वाले और अजनबी होते जाते हैं। यह बोध उस ढंग को बदल देता है जिससे हम ग्रामीण पृष्ठभूमि से आए छात्रों के सामने पेश आने वाली समस्याओं को समझते हैं। यह सामाजिक व्यवस्था की एक व्यापक समस्या है जिसके लिए केवल उन्हीं को दोषी नहीं ठहराया जा सकता। (पृष्ठ 19)

समाजशास्त्र: आधुनिकता की उपज

मदान अपने पाठकों को समाजविज्ञान के क्षेत्र में आमंत्रित करते हैं, और उन्हें आधुनिकता और शिक्षा पर सोचने के लिए बाध्य करते हैं। बहरहाल, यह कहा जा सकता है कि समाजविज्ञान एक ज्ञानात्मक अनुशासन के रूप में आधुनिकता की उपज है - तर्कबुद्धि के अपने सिद्धान्त

और जाँच-पड़ताल की अपनी नई विधियों के साथ, और औद्योगिकीकरण, पूँजीवाद तथा तकनीकी-वैज्ञानिक विकास जैसे सामाजिक आर्थिक रूपाकारों के साथ 'प्रगति' का जश्न मनाते यूरोपीय एनलाइटनमेण्ट के युग की उपज। उन तीन 'क्लासिकल' चिन्तकों के बारे में सोचें जिनकी चर्चा समाजशास्त्री अक्सर करते हैं - एमिली दुर्खेम, मैक्स वेबर और कार्ल मार्क्स। जैसा कि रॉबर्ट निस्बेत ने खूबसूरत ढंग से कहा है, ये तीनों चिन्तक औद्योगिक पश्चिमी पूँजीवाद का सामाजिक भूदृश्य रच रहे थे। दुर्खेम जटिल समाजों की क्रियाशीलता की सूक्ष्म समझ के लिए जाने जाते थे - उस पद्धति की समझ के लिए जिसके तहत 'जैविक एकजुटता' के नए रूप को 'यांत्रिक एकजुटता' से अलगया जाना चाहिए ताकि उदीयमान व्यक्तिवाद और व्यावसायिक/सांस्कृतिक भेदों के बीच किसी तरह की सामाजिक और नैतिक संयोजकता को बहाल किया जा सके। वेबर ने पूँजीवाद के उदय में प्रोटेस्टेंटिज़्म/काल्वनिज़्म के निहितार्थों का परीक्षण किया था। इसके अतिरिक्त, उन्होंने दुनिया के बढ़ते हुए तार्किकीकरण/बौद्धिकीकरण की, और 'वैधानिक, तार्किक' प्रभुत्व के नए रूप के तौर पर (स्कूलों से लेकर अस्पतालों तक; बैंकों से लेकर कारखानों तक - आधुनिक संस्थाओं के प्रबन्धन के लिए) नौकरशाही

संरचना की निर्मिती के बारे में बात की थी। और मार्क्स ने सामन्तवाद के पतन तथा पूँजीवाद के उदय के साथ नए वर्गों की निर्मिति की पड़ताल की थी। इसके अतिरिक्त, उन्होंने अपनी द्वन्द्वात्मक तर्कणा और राजनैतिक-आर्थिक विश्लेषण की मदद से पूँजीवाद के अन्तर्विरोधों की पहचान की थी। एक तरह से, हमारे समय में समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों के विकास को इन उत्कृष्ट चिन्तकों के साथ एक किस्म की सृजनात्मक और आलोचनात्मक मुठभेड़ के रूप में देखा जा सकता है। और समाजशास्त्रीय सिद्धान्त अनेक चिन्तकों के योगदान के माध्यम से विकसित होने लगे, जिनमें टेल्लॉट पार्सन्स से लेकर जॉर्जन हेबरमास तक, या एन्थनी गिडनस से लेकर मिशेल फूको तक, परिप्रक्ष्यों की बहुलता थी। और इस मूल्यवान सैद्धान्तिक बहस ने इन बदलते हुए वक्तों में शिक्षा की हमारी समझ को बढ़ाने में भी मदद की।

अर्थपूर्ण व आलोचनात्मक पड़ताल

जो चीज़ मदान की इस पुस्तक को विशिष्टता प्रदान करती है, वह है समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों की समृद्ध परम्पराओं से अर्थपूर्ण अन्तर्दृष्टियाँ अर्जित करना और अपने पाठकों को अर्थपूर्ण और आलोचनात्मक ढंग से शिक्षा की क्रियाशीलताओं की पड़ताल के लिए प्रेरित करना। अपने तर्कों के

समर्थन के लिए, मैं इस पुस्तक से तीन उदाहरण लेता हूँ।

पहला, एमिले दुर्खेम के कृतित्व का हवाला देते हुए, मदान अपने पाठकों से सावधानीपूर्वक और ध्यान से सोचने का आग्रह करते हैं। हाँ,

‘जैविक एकजुटता’ के बीजों को समेकित करते हुए, ‘स्कूलों को विभिन्न समूहों, क्षेत्रों और समुदायों के बीच संश्लेषण

का बोध विकसित करने की ज़रूरत है। इस तरह, वे समझते हैं कि क्यों ‘दुर्खेम ने यह तर्क दिया था कि स्कूलों का मार्गदर्शन करने में राज्य की विशेष भूमिका है’। लेकिन फिर, हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि आधुनिक जटिल समाजों को दो समान रूप से महत्वपूर्ण ज़रूरतों के साथ निरन्तर समझौता-वार्ता करते रहने की ज़रूरत है - भेद और एकजुटता, या व्यक्तिवाद और सामाजिक जुड़ाव; और अगर यह नाजुक सन्तुलन बिगड़ जाता है, तो हमें - सामाजिक अव्यवस्था (एनाॅमिक डिसऑर्डर) से लेकर सृजनात्मकता की क्षति तक - कई समस्याओं का सामना करना होगा।

यद्यपि, दुर्खेम के मुताबिक, ‘सामाजिक विसंगति (एनाॅमी)



मापदण्डहीनता और आत्महत्या समेत कई समस्याओं का कारण बन सकती है, लेकिन मदान अपने सूक्ष्म विश्लेषण के सहारे हमें यह स्मरण कराना नहीं भूलते कि ‘दिमाग की विसंगत (एनाॅमिक) अवस्थाएँ

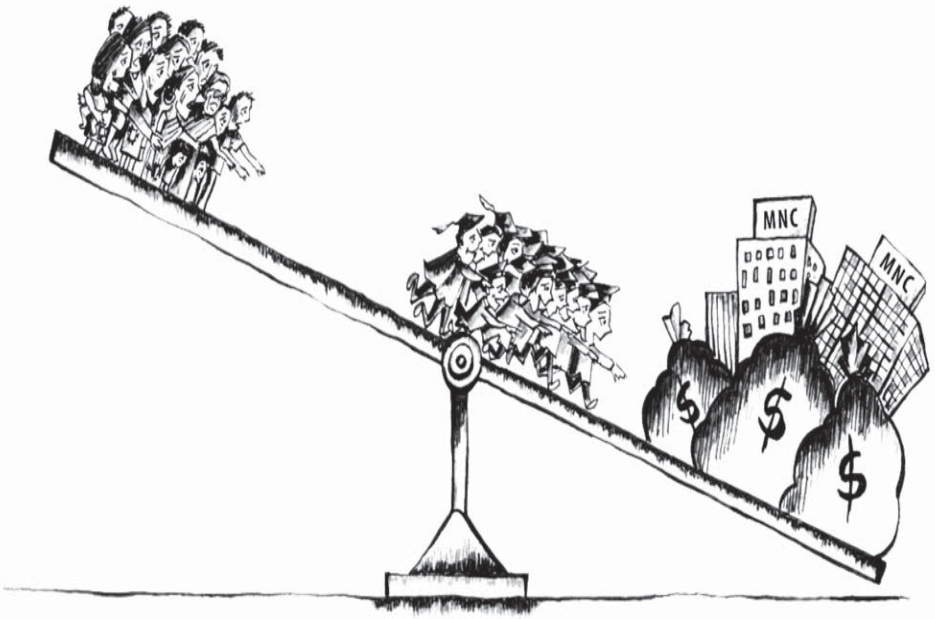
अत्यन्त सृजनात्मक भी हो सकती हैं, जो लोगों को नवाचारी होने की, नए समाधान और आचरण के नए ढंग तलाशने की ओर प्रवृत्त कर सकती हैं। एक तरह से, वे आपको सोचने को बाध्य करते हैं। इसी तरह, वे स्वीकार करते हैं कि ‘विविध लोगों और संस्कृतियों को जटिल समाज में एकसाथ लाना और उन्हें महज़ अपने परिवार के सदस्यों के साथ नहीं बल्कि एक-दूसरे से जुड़े होने का एहसास कराना महत्वपूर्ण है’। जहाँ इस किस्म के ‘कार्यात्मक’ तर्क जिसकी पक्षधरता एमिले दुर्खेम और टेलेंट पारसॅन्स करते हैं, की अपनी प्रासंगिकता हो सकती है, वहीं मदान पाठकों को यह स्मरण कराना नहीं

भूलते कि सब कुछ व्यवस्थित और सामंजस्यपूर्ण नहीं होता; वास्तव में, 'समाजों के कई आन्तरिक तनाव और टकराव होते हैं'।

दूसरा, बाज़ारों और शिक्षा की पड़ताल करते हुए, मदान एक अत्यन्त सूक्ष्म तर्क लेकर आते हैं। वे कार्ल पोलान्थी का हवाला देते हैं, और हमें उन तीन तरीकों की याद दिलाते हैं जिनसे वस्तुओं और सेवाओं का विभिन्न समाजों में विनिमय हो सकता है। ये तीन तरीके हैं, पारस्परिकता, पुनर्वितरण और कर्मांडीफिकेशन। हमारे समय में, जब हम पण्य वस्तुओं (कर्मांडी) के विनिमय की दिशा में आगे बढ़ चुके हैं, और पैसा हर वस्तु का माप बन गया लगता है, मदान पोल्यानी की सामाजिक सम्बन्धों की 'डिसएम्बेडिंग' की अवधारणा को याद करते हैं। आश्चर्य की बात नहीं है कि शिक्षा का क्षेत्र 'डिसएम्बेडिंग' और कर्मांडी-वस्तु-विनिमय की इस प्रक्रिया से मुक्त नहीं हो सकता। मदान इसके फायदों से इनकार नहीं करते। उदाहरण के लिए, इन दिनों ऐसा प्रतीत होता है कि शिक्षा सम्बन्धी विमर्श ने, एक अधिक 'सांस्कृतिक दृष्टिकोण' विकसित करने की खातिर 'साहित्य के गौरवग्रन्थों, धर्मग्रन्थों और कुछ खगोलविद्या' के अध्ययन की खब्त से खुद को मुक्त कर लिया है। उदाहरण के लिए, अब किसी सरकारी कार्यालय का बाबू अपनी

बचत से कुछ पैसा खर्च करना चाहता है, अपनी बेटी को किसी इंजीनियरिंग कॉलेज में प्रवेश दिलाना चाहता है ताकि वह सॉफ्टवेयर इंजीनियर बन सके, पैसे कमा सके, और अपने परिवार के सामाजिक उत्थान में मदद कर सके। यह चीज़ जाति/वर्ग में बँटे स्तरीकृत समाज का एक किस्म का लोकतंत्रीकरण करती है। एक तरह से, इस तरह के कर्मांडी आधारित वस्तु-विनिमय में सब कुछ बुरा ही नहीं है।

लेकिन मदान चाहते हैं कि उनका पाठक सोच-विचार करे, और इस प्रक्रिया के विभिन्न फलितार्थ देखे। आज जबकि नव्यउदारवाद के इस युग में बाज़ार से परिचालित तर्कणा ने शिक्षा के क्षेत्र का उपनिवेशीकरण शुरू कर दिया है, हम शिक्षा की उन दुकानों के विभिन्न ब्राण्डों की सतत वृद्धि देख रहे हैं जो वास्तविक ज्ञान के रूप में तमाम तरह की तकनीकी-प्रबन्धकीय दक्षताएँ बेच रही हैं, और 'प्लेसमेण्ट और सैलरी पैकेज' के मिथकों से सम्भावित उपभोक्ताओं को सम्मोहित कर रही हैं। और मदान शिक्षा के प्रति इस किस्म के विशुद्ध साधनपरक दृष्टिकोण की सीमाओं को देखने से नहीं चूकते। वे हमें याद दिलाते हैं कि अर्थपूर्ण शिक्षा को हमें आलोचनात्मक प्रश्न उठाने की सामर्थ्य भी प्रदान कर सकना चाहिए। मैं इस पुस्तक से उद्धृत करता हूँ:



शिक्षा को क्या करना चाहिए, इसका फैसला करने की छूट केवल बाज़ारों को देने में समस्याएँ हैं। यहाँ तक कि यह गरीबों के लिए खतरनाक तक हो सकता है अगर उन्हें यह सिखाया जाता है कि वे आँख मूँदकर वह सब स्वीकार कर लें जो सम्पन्न और शक्तिशाली लोग कर रहे हैं और वे उन पर सवाल उठाना नहीं सीखते। एक महत्वपूर्ण चीज़ जिसमें कई हिन्दुस्तानी विश्वास करते हैं और जो हमें सीखना चाहिए, वह यह है कि गलत कामों का किस तरह विरोध किया जाए और किस तरह न्याय और निष्पक्ष व्यवहार के लिए दबाव डाला जाए। यह भी एक ऐसी चीज़ है जो ज्यादातर ताकतवर लोगों को (हालाँकि सभी को नहीं) सुविधाजनक लग सकती है। शिक्षा का कॅम्पैडिफिकेशन

इस तरह कई महत्वपूर्ण सवाल खड़े कर सकता है। (पृ. 59-60)

इसी तरह, यह भी उतना ही खतरनाक होगा, अगर हम सांस्कृतिक कॅम्पैडिफिकेशन को यह छूट दे देते हैं कि वह शिक्षक को एक 'दुकानदार' और छात्रों को उनके ग्राहक में बदल दे। यह इस बात को भूल जाने जैसा होगा कि शिक्षक बुनियादी तौर पर ऐसे 'बौद्धिक और चिन्तक हैं जो दुनिया की व्याख्या करने में या उसके बारे में सृजनात्मक ढंग से सोचने में मदद करते हैं'।

तीसरा, औपचारिक संगठनों में तार्किक-वैधानिक सत्ता की एक विधि के रूप में नौकरशाही की मैक्स वेबर की अवधारणा को याद करते हुए,

मदान इस बात का बहुत अच्छी तरह विश्लेषण करते हैं कि किस तरह नौकरशाही संरचना का यह रूप हमारे समय में स्कूलों की रोजमर्रा गतिविधियों को आकार देता है। वास्तव में, आधुनिक स्कूल उस ढंग से काम नहीं कर सकते जिस तरह 10-20 छात्रों वाले गुरुकुल किया करते थे। जब हमारे पास, मसलन, 1000 छात्रों वाला स्कूल हो, तो हमें किसी-न-किसी तरह की नौकरशाही संरचना की ज़रूरत होती है। हमें 'स्पष्ट नियमों' की दरकार होती है; हमारे लिए ज़रूरी होता है कि हम काम को 'छोटी-छोटी इकाइयों में विभाजित करें; या फिर हमें किसी-न-किसी तरह के 'नियमितीकरण' की, 'निर्वैयक्तिकता' और 'सोपानक्रम' की ज़रूरत होती है।

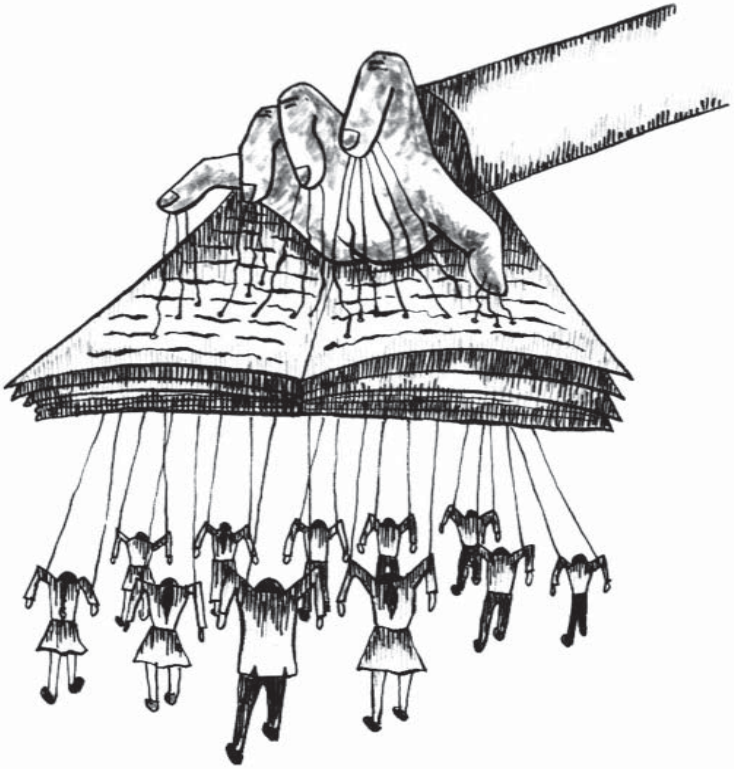
हालाँकि, वे वेबर की व्यथा को - नौकरशाही के 'लौह पिंजरे' में अन्तर्निहित 'निर्वैयक्तीकरण' और 'अलगाव' के अनुभव को - लेकर भी उतने ही सजग हैं। स्कूलों के अतिशय नौकरशाहीकरण की सीमाओं को समझने के लिए मदान के अन्तर्दृष्टिपूर्ण पर्यवेक्षणों और चिन्तन पर ध्यान दें:

छात्रों और शिक्षकों की कई पीढ़ियाँ उन नियमों और निर्देशों की जकड़ में छटपटाती रही हैं जो उनकी भावनाओं और सहज प्रवृत्तियों को कुचलती प्रतीत होती हैं। मसलन, पूरे दिन को आठ पीरियडों में विभाजित करने की प्रणाली

जिसके तहत हर पीरियड अलग-अलग विषयों के लिए निर्धारित होता है। इस प्रणाली के कई फायदे हैं, जैसे कि इससे तमाम विषयों को समेटा जाना सुनिश्चित होता है और छात्र सारे दिन एक ही विषय में फँसे नहीं रहते। लेकिन ऐसे भी दिन होते हैं जब कोई कक्षा बहुत सुन्दर तरीके से चल रही होती है और किसी विषय को लेकर ज़बरदस्त उत्साह पैदा हो रहा होता है, और तभी पीरियड समाप्त होने का ऐलान करती घण्टी बज उठती है और आपको कुछ और पढ़ने के लिए तैयार हो जाना पड़ता है। ऐसे में यह सोचना पड़ता है कि यह औपचारिक व्यवस्था एक अच्छी शिक्षा में मदद करती है या उसमें बाधा डालती है। (पृ.97)

चिन्तन का आग्रह

मुझे लगता है कि देखने के इसी ढंग के चलते मदान अपने पाठकों से इवान इलीच और मिशेल फूको जैसों से बातचीत करने का आग्रह करते हैं। स्कूल जिस तरीके से काम करते हैं और मनुष्य के दिमाग को अनुकूलित करते हैं और हमारे मानसिक क्षितिज को परिसीमित करते हैं, उसके खिलाफ इवान इलीच ने सशक्त तर्क दिए थे और 'डिस्कूलिंग' सोसायटी की वकालत की थी। और फूको हमें उस 'अनुशासन' और 'निगरानी' की याद दिलाते हैं जिनके माध्यम से स्कूल - जेलों की भाँति - 'आज्ञाकारी'



शरीर और दिमाग गढ़ते हैं। वास्तव में, मदान का इरादा, जिस हद तक मैं समझ सका हूँ, तैयारशुदा समाधान उपलब्ध कराना नहीं है। इसकी बजाय, एक संवेदनशील शिक्षाशास्त्री की तरह वे पाठकों से सोचने, चिन्तन करने, यहाँ तक कि द्वैध के क्षेत्र में प्रवेश करने तक का आग्रह करते हैं। जब वे इस बात को पुस्तक की प्रस्तावना में दोटूक ढंग से स्पष्ट करते हैं तो एकदम सही होते हैं:

मैंने हर समस्या का महज़ कोई एक सर्वश्रेष्ठ समाधान पाने पर बहुत ज्यादा बल नहीं दिया है। उस पाठक के लिए जो लोगों को यह कहते हुए सुनने का अभ्यस्त है कि उनके पास हर चीज़ का उचित समाधान है, यह लेखन की परेशान कर देने वाली शैली प्रतीत हो सकती है। लेकिन मुझे लगता है कि दुनिया को देखने के अनेक ढंग प्रस्तुत करना दीर्घकालिक स्तर पर अधिक सहायक हो सकता है। (पृ.5-6)

मुझे यह कहते हुए कोई हिचकिचाहट नहीं है कि बहुत सावधानीपूर्वक छह अध्यायों में विभाजित यह पुस्तक उन तमाम लोगों को - मेरा मतलब है, अध्यापकों, शिक्षाविदों, शोधकर्ताओं, नीति-निर्माताओं अभिभावकों और युवा छात्रों को - पढ़नी चाहिए जो हमारे समय में शिक्षा की क्रियाविधि से गहरा सरोकार रखते हैं। और जैसा कि हर अच्छी पुस्तक पाठक को लेखक से और अधिक की अपेक्षा करने को प्रेरित करती है, मेरी भी

कुछ अपेक्षाएँ हैं। दरअसल, मैं तो प्रोफेसर अमन मदान से आग्रह करूँगा कि वे एक और पुस्तक लिखें, और इस बार वह उपनिवेशवाद और आधुनिकता के साथ हिन्दुस्तान की अनूठी मुठभेड़ पर; वि-उपनिवेशीकरण और जाति, मज़हब और अस्मिता पर नए चिन्तनों; और उनके नतीजे में ज्योतिराव फुले से लेकर डॉ. बी.आर. अम्बेडकर या मोहनदास करमचन्द गाँधी और रवीन्द्रनाथ ठाकुर के यहाँ से उभरती शिक्षा पर केन्द्रित बहस के बारे में हो।

अविजित पाठक: सन् 1990-2021 के दौरान जे.एन.यू. में समाजशास्त्र के अध्यापक रहे हैं। वे जे.एन.यू. के सबसे लोकप्रिय शिक्षकों में से एक माने जाते थे। उनका शिक्षा पर गहरा अध्ययन है और आधुनिकता, सामाजिक सिद्धान्त और आलोचनात्मक शिक्षाशास्त्र पर उन्होंने विस्तार से लिखा है। अपनी पुस्तक *शिक्षा और नैतिक मूल्यों की खोज* में आज के समय में किस तरह की शिक्षा की ज़रूरत है, उस पर उन्होंने गहरा विचार किया है।

अँग्रेज़ी से अनुवाद: मदन सोनी: आलोचना के क्षेत्र में सक्रिय वरिष्ठ हिन्दी लेखक व अनुवादक। इनकी अनेक पुस्तकें प्रकाशित हैं। इन्होंने उम्बर्तो एको के उपन्यास *द नेम ऑफ़ दि रोज़*, डैन ब्राउन के उपन्यास *दि द विंची कोड* और युवाल नोआ हरारी की किताब *सोपियन्स: अ ब्रीफ़ हिस्ट्री ऑफ़ ह्यूमनकाइंड* समेत अनेक पुस्तकों के अनुवाद किए हैं।

सभी चित्र किताब *एजुकेशन एण्ड मॉडर्निटी: सम सोशोलॉजिकल पर्सपेक्टिव* से साभार। लेख में आए सभी उद्धरण अँग्रेज़ी शीर्षक *एजुकेशन एण्ड मॉडर्निटी: सम सोशोलॉजिकल पर्सपेक्टिव* से लिए गए हैं।

एजुकेशन एण्ड मॉडर्निटी: सम सोशोलॉजिकल पर्सपेक्टिव, लेखक: अमन मदान, सन् 2019 में *एकलव्य फाउंडेशन*, भोपाल द्वारा प्रकाशित, पेज: 118. यह पुस्तक *शिक्षा और आधुनिकता - कुछ समाजशास्त्रीय नज़रिये* नाम से हिन्दी में भी उपलब्ध है।